सजीवों में सहयोग की इन्तहा

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

आई.आई.टी. कानपुर के देबाशीष चौधरी ने इस बात का अध्ययन किया है कि चींटियां जब अपनी बांबी से निकलकर भोजन की तलाश में जाती हैं और जब भोजन ढोते हुए वापिस लौटती हैं, तो उनका व्यवहार कैसा होता है। उन्होंने पाया कि चींटियों का व्यवहार निहायत अनुशासित होता है और रास्ते में ट्राफिक जाम की समस्या पैदा नहीं होती। बाहर जाती चींटियां हमेशा भोजन लेकर आती, घर लौटती चींटियों को रास्ता देती हैं।

दरअसल भोजन ढोने वाली चींटियां यह भोजन सिर्फ अपने लिए नहीं बल्कि पूरी बस्ती के लिए लाती हैं। यह 'जन सेवा' करते हुए वे मेहनत करती हैं और अपनी ऊर्जा खर्च करती हैं। मधुमक्खियों के छत्तों में यह बात और भी स्पष्ट नज़र आती है। इनमें कामगार मधुमक्खियां पूरी बस्ती के लिए खटती हैं मगर इससे उनके अपने प्रजनन में कोई मदद नहीं मिलती। मधुमक्खी जैसे कीटों को 'यूसोश्यल कीट' यानी सचमुच में सामाजिक कीट कहते हैं। ऐसे सामाजिक कीटों में कामगार तो प्रजनन में अक्षम अर्थात वंध्या होते हैं। ज़ाहिर है यह 'सर्वोत्तम की उत्तरजीविता' यानी 'सर्वाइवल ऑफ दी फिटेस्ट' का मामला नहीं है। सवाल यह है कि प्राकृतिक चयन और प्रजातियों के विकास के दौरान कब व कैसे स्व-हित का महत्व समाप्त होता गया।

इस मामले में डारविन ने मात्र इतना ही कहा था कि परिवार या बस्ती में इस तरह से एक-दूसरे की मदद करने से पूरे समूह के प्रसार में मदद मिलती है। 1960 के दशक में इस विचार को डॉ. हैमिल्टन ने विस्तार दिया था। उन्होंने स्पष्ट किया था कि सहयोग से फायदा यह होता है कि जीन्स को अगली पीढ़ियों में हस्तांतरित करने में मदद मिलती है क्योंकि आपके रिश्तेदार के कुछ जीन्स तो आपके जैसे ही होते हैं। आप अपने रिश्तेदारों की मदद करेंगे, तो उनकी जितनी संतानें होंगी, उनमें आपके जीन्स भी तो होंगे। इस तरह से विस्तृत परिवार को स्थिरता मिलती है और वह बढ़ता जाता है।

जॉन मैनार्ड स्मिथ ने इसे परिजन चयन का नाम देते हुए कहा था कि "परिजन चयन से मेरा आशय ऐसे गुणधर्मों के विकास से है जो प्रभावित जीव के निकट रिश्तेदारों की उत्तरजीविता को ऐसी प्रक्रियाओं के ज़रिए बढ़ाते हैं जिनसे जनसंख्या की प्रजनन संरचना की निरंतरता नहीं टूटती।" सरल शब्दों में कहें तो, "चाहे मैं मर जाऊं मगर मेरा परिवार बच जाएगा और पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ता रहेगा।" इसी बात को महान ब्रिटिश जीव वैज्ञानिक जे.बी.एस. हाल्डेन ने इन शब्दों में व्यक्त किया था, "क्या मैं अपने भाई की जान बचाने के लिए अपनी जान दूंगा? जी नहीं, मगर मैं अपने दो भाइयों या आठ चचेरे-ममेरे भाइयों को बचाने के लिए ज़रूर अपनी जान दांव पर लगा दूंगा।" हाल्डेन ने ऐसा क्यों कहा? क्योंकि जिनेटिक दृष्टि से उनका भाई 50 प्रतिशत उनके जैसा ही है, जबकि चचेरे-ममेरे भाई मात्र 12.5 प्रतिशत उनके जैसे हैं। अर्थात खुद की जान गंवाकर दो भाइयों को बचाकर वे अपना जिनेटिक अस्तित्व अक्षुण्ण रख सकते हैं और आठ चचेरे-ममेरे भाइयों को बचाकर भी यही स्थिति होगी।

अर्थात इस मामले में लाभ-लागत का हिसाब किया जा रहा है ताकि जिनेटिक वंश को आगे बढ़ाया जा सके। दो टूक शब्दों में कहें, तो हम सब जीन्स के वाहक मात्र हैं और ये जीन्स अपनी उत्तरजीविता और प्रसार के लिए हमें कठपुतली की तरह नचाते हैं। रिचर्ड डॉकिन्स ने अपनी मशहूर पुस्तक *दी सेल्फिश जीन* में सारे जीवों को जीन मशीन की संज्ञा दी है।

परिजन चयन उन जीवों में भी काम करता है जिनमें कोई 'दिमाग' नहीं होता। यह बात कनाडा की डॉ. सुसान डुड्ली ने स्पष्ट की थी। उन्होंने यह बात एक ही गमले में परस्पर असम्बंधित पौधे या एक ही पौधे की कलम से लगे पौधों की वृद्धि की तुलना के आधार पर पता की थी। उन्होंने पाया था कि असम्बंधित पौधे तो मिट्टी में उपस्थित पोषक तत्वों के लिए आपस में होड़ करते हैं मगर परस्पर सम्बंधित पौधों में ऐसा नहीं होता।

परिजन चयन के आधार पर परिवार के सदस्यों के बीच सहयोग की व्याख्या की जा सकती है। मगर हम देखते हैं कि ऐसे व्यक्ति भी आपस में मदद का हाथ बढ़ाते हैं जो जिनेटिक रूप से परस्पर अजनबी हैं। तो, अजनबियों के बीच सहयोग का विकास कैसे हुआ होगा? कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि एक सुगठित समुदाय में रहने वाले लोगों के संदर्भ में इसकी व्याख्या समूह-चयन के आधार पर की जा सकती है। इस बात को उस समूह के सदस्यों में आसानी से देखा जा सकता है जो एक साथ रहते हैं और आपस में प्रजनन करते हैं। इसका मतलब यह होता है कि पूरा समूह जिनेटिक दृष्टि से सम्बंधित है, चाहे यह सम्बंध कितना ही ढीला-ढाला व दूरस्थ क्यों न हो।

कुछ वैज्ञानिकों ने इस तर्क को दो या दो से अधिक समूहों पर भी लागू किया है। ऐसे समूह जिनमें परस्पर अंतर्क्रिया होती हो - चाहे प्रतिस्पर्धा के रूप में या तुलना के रूप में। उन्होंने पाया कि जिन समूहों के सदस्यों के बीच ज़्यादा सहयोग होता है उनका प्रदर्शन बेहतर रहता है और अन्य समूह उनका अनुकरण करना चाहते हैं।

अपनी पुस्तक *डिसेन्ट ऑफ मैन* में चार्ल्स डारविन ने मत व्यक्त किया था कि दो प्रतिस्पर्धी कबीलों में "यदि एक कबीले में अधिक संख्या में साहसी, सहानुभूतिपूर्ण, और वफादार सदस्य हों, जो सदा एक-दूसरे को खतरे की चेतावनी देने को, मदद करने को और एक-दूसरे की रक्षा करने को तत्पर हों, तो यह कबीला ज़्यादा सफल होता है और दूसरे पर फतह कर लेता है।"

जैव विकास का अध्ययन करने वाले जीव वैज्ञानिक परस्पर परोपकार (जो प्रायः एक-एक जीव के बीच होता है), परिजन चयन, समूह चयन और धरती पर हमसे बहुत पहले आए कम विकसित जीवों में पाए जाने वाले परस्पर सहयोग की उत्पत्ति और उदाहरणों की खोजबीन में लगे हैं। साइन्स पत्रिका के 4 सितंबर 2009 के अंक में प्रकाशित अपने आलेख *ऑन दी ओरिजिन ऑफ को-ऑपरेशन* (सहयोग की उत्पत्ति) में एलिज़ाबेथ पेनिसी ने बैक्टीरिया और वायरस में सहयोगी व्यवहार के उदाहरण दिए हैं। पेनिसी ने डॉ. स्टुअर्ट वेस्ट द्वारा *स्यूडोमोनास एरुजिनोसा* नामक सूक्ष्मजीव पर किए गए प्रयोगों का हवाला दिया है। यह बैक्टीरिया ऐसे रासायनिक संकेत छोड़ता है जिन्हें साथी बैक्टीरिया महसूस कर पाते हैं और इसके फलस्वरूप ये बैक्टीरिया कई उपयोगी रसायन छोड़ते हैं। इनमें एक रसायन ऐसा होता है जो एक झिल्ली बना लेता है जिस पर कई बैक्टीरिया चिपककर एक समूह बना सकते हैं।

इस परिघटना को सुंदर नाम दिया गया है - 'कोरम संवेदन'। सूक्ष्मजीव वैज्ञानिकों के समक्ष एक बड़ी चुनौती यह है कि इस झिल्ली को तहस-नहस करने के तरीके खोजें ताकि कोरम को तोड़ा जा सके और रोगजनक बैक्टीरिया को नष्ट किया जा सके।

आप चाहें तो जीवन के क्रम में और नीचे जाकर वायरसों को देख सकते हैं। वायरस वास्तव में मात्र जीन्स का पुंज है जो एक प्रोटीन के लिफाफे में बंद होता है। वायरस तो सजीव कहलाने की पात्रता भी नहीं रखते - इनमें प्रजनन के लिए ज़रूरी सूचना तो है मगर इस सूचना का उपयोग करने के लिए ज़रूरी चयापचय की मशीनरी नहीं है। किसी को सजीव तो तब कहा जाता है जब उसके पास ये दोनों चीज़ें हों। वायरस तो अपने मेज़बान की चयापचय मशीनरी का उपयोग करते हैं।

कुछ वायरस, जिन्हें फेज यानी भक्षी कहा जाता है, बैक्टीरिया को अपना निशाना बनाते हैं ताकि संख्यावृद्धि कर सकें। पेनिसी ने डॉ. जील सैक्स और डॉ. जेम्स बुल के शोध के हवाले से बताया है कि इन वायरसों में 'एकता की ताकत' की बात को उसकी इन्तहा तक ले जाया गया है।

सैक्स और बुल के प्रयोग में दो अलग-अलग भक्षी वायरसों को एक बैक्टीरिया समूह पर हमला करने का मौका दिया गया और कई पीढ़ियों तक इनका मुआयना किया गया। कुछ पीढ़ियों के बाद ये दो फेज वायरस अपने अलग-अलग जीनोम को प्रोटीन के एक ही लिफाफे में पैक करने लगे। अंततः एक वायरस में अपना प्रोटीन आवरण बनाने की क्षमता तक जाती रही। कुल मिलाकर निष्कर्ष यह रहा कि जब दोनों को एक ही बैक्टीरिया कोशिका में घुसपैठ करना है तो क्यों न परस्पर हाथ मिला लिया जाए। सहयोग की इन्तहा है, नहीं? ***(स्रोत फीचर्स)***